पारस परस

वर्ष-12, अंक-4, अक्टूबर-दिसम्बर, 2022, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

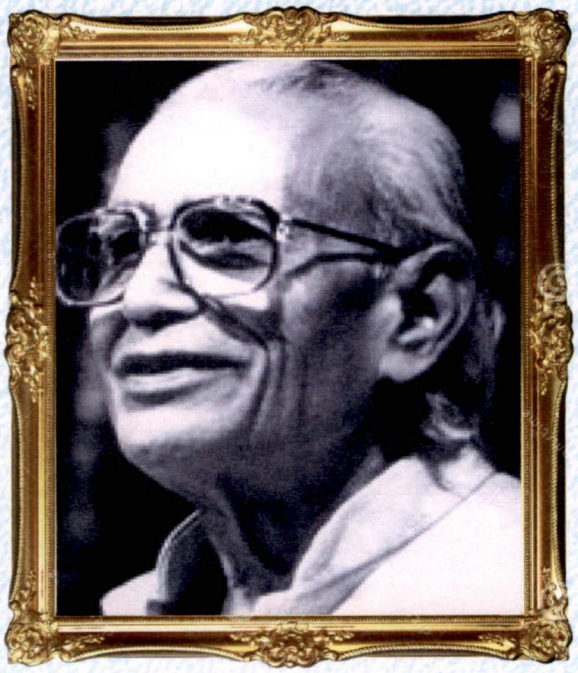

धर्मवीर भारती

जन्म 25 दिसम्बर 1926, निधन 4 सितम्बर 1997

बरसों के बाद उसी सूने– आँगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना
रिसती–सी यादों से पिरा–पिरा उठना
मन का कोना–कोना

कोने से फिर उन्हीं सिसकियों का उठना
फिर आकर बाँहों में खो जाना
अकस्मात् मण्डप के गीतों की लहरी
फिर गहरा सन्नाटा हो जाना
दो गाढ़ी मेंहदीवाले हाथों का जुड़ना,
कँपना, बेबस हो गिर जाना

रिसती–सी यादों से पिरा–पिरा उठना
मन को कोना–कोना
बरसों के बाद उसी सूने–से आँगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना !

वर्ष : 12 अंक : 4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2022 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि.
लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
क्या भूल गये? जो याद करें	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
निशा पुकारती रही रूका न चांद एक पल	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
अंजुरी भर धूप	धर्मवीर भारती	6
गीत मेरे	हरिवंशराय बच्चन	7
उठे बादल, झुके बादल	हरिनारायण व्यास	8
समय के सारथी		
आहट	महेश आलोक	9
किताबें झांकती हैं	गुलजार	10
सफलता पांव चूमें	कमलेश भट्ट 'कमल'	11
रहस्य	हबीबुल हसन	
गीतों के गांव	ओम निश्चल	13
ठहरो साथी	ओम नीरव	14
दोहे	विज्ञान व्रत	15
वृद्धो को भूख लगती है	विद्या विन्दु सिंह	16
कलरव		
जुड़वां की मुसीबत	श्रीनाथ सिंह	17
सभा का खेल	सुभद्रा कुमारी चौहान	18
तोते पढ़ो	श्रीधर पाठक	19
नारी स्वर		
चकमक पत्थर	अनामिका	20
प्रेम तुम्हारा पावन-पावन	रूचि चतुर्वेदी	21
प्रेम के दिनों में	गीताश्री	22
अब मैं लौट रही हूं	अमृता भारती	23
जीवनाधार	अनुपमा पाठक	24
मोक्ष	इंदिरा शर्मा	25
रीतते हुए	उमा अर्पिता	26
सम्मोहन	ज्योत्स्ना मिश्रा	27
मां के लिए	निवेदिता	28
मेघ बूंद	पुष्पिता	29
नवोदित रचनाकार		
बारिश	जावेद आलम खान	30
सपना	अखिलेश श्रीवास्तव	31
मकड़ी के जाले	अनूप अशेष	32
पिता की इच्छाएं	आशीष त्रिपाठी	33
एक सच यह भी	कुमार विक्रम	34
दीवाली	जनार्दन राय	35
धूप आगे बढ़ गई	जगदीश पंकज	36
गरीब	निशांत मिश्रा	37
गिलहरी	नरेश मेहन	38
जीता जागता इंसान	बृजेश नीरज	39
मेरी मातृभूमि	भारत प्रसाद	40

खलगण से दूरी ही श्रेयस्कर है

हितोपदेश के विग्रह नामक तृतीय प्रकरण में शूद्रक–वीरवर की कथा के अन्तर्गत कहा गया है कि –

'योऽकार्यं कार्यवच्छास्ति स किं मन्त्री नृपेच्छया।
वरं स्वामिमनोदुःखं, तन्नाशो न त्वकार्यतः।।105।।
वैद्यो गुरुश्च मन्त्री च यस्य राज्ञः प्रियः सदा।
भारीरधर्मकोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते'।।106।।

अर्थात जो मंत्री राजा की इच्छा से ही अकार्य (न करने योग्य या अनुचित कार्य) को भी कार्य के समान बताता है, वह अयोग्य मन्त्री है। क्योंकि स्वामी के मन में कुछ देर के लिए थोड़ा दुःख होना तो ठीक है, परन्तु अकार्य से उसका विनाश होना तो कभी भी अच्छा नहीं है। जिस राजा के वैद्य, गुरु और मन्त्री–ये तीनों प्रिय बोलने वाले होते हैं, अर्थात् हाँ में हाँ मिलाने वाले होते हैं, वह राजा शीघ्र ही क्रमशः शरीर, धर्म व कोश से हीन हो जाता है। अर्थात् सचिव, वैद्य और गुरु ये तीनों जब चाटुकारितापूर्ण बातें करने वाले होंगे तब राजा के हितों की हानि होना निश्चित है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी श्रीरामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत इसी प्रकार का वर्णन किया है।

यह सर्वविदित है कि यदि ऐसे लोग अपने दायित्वों, कर्त्तव्यों का सम्यक् निर्वहन करते हैं तो निश्चित रूप से वे जिनके साथ रहते हैं उनका तो कल्याण होता ही है समाज का भी कल्याण सम्भव होता है। सचिव की उपयुक्त सलाह से जहाँ राज्य सुरक्षित रहता है, वहीं गुरु के सही सलाह देने से समाज में न्याय व नैतिकता बनी रहती है और वैद्य की सही सलाह पर मानसिक और शारीरिक निरामयता रहती है। ऐसे व्यक्तियों का दायित्व है कि इन्हें हित की सच्ची बात कहनी चाहिए, जिससे सभी प्रकार की उन्नति व कल्याण हो।

उक्त चर्चा का उद्देश्य यह है कि सामान्यतः ऐसे लोग घोषित या अधिकृत सलाहकार होते हैं जिन्हें भिन्न–भिन्न दायित्व सौंपे गए होते हैं और उनसे यह अपेक्षा होती है कि वे जिसके द्वारा नियुक्त हैं, उसके प्रति उनका समर्पण होना चाहिए किन्तु यह चाटुकारिता के रूप में न होकर उचित व सही मत को प्रकट करने का साहस रखने वाले रूप में होना चाहिए। किन्तु इन अधिकृत व्यक्तियों से भिन्न कतिपय व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें किसी भी प्रकार का कोई दायित्व नहीं मिला होता है फिर भी वे बिना किसी कार्य के हर बात में सलाह देने का प्रयास करते हैं। इसे हर बात में 'टाँग अड़ाना' भी कह सकते हैं। तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में लिखा है कि –

'बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ।
जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ'।।3/1।।

श्रीरामचरितमानस के प्रारम्भ में की गई विभिन्न देवी–देवताओं एवं विभूतियों की वन्दनाओं के साथ ही तुलसीदास जी ने 'खल–गन' (दुष्ट व्यक्तियों) की भी वंदना की है जो बिना किसी प्रयोजन के प्रतिकूल आचरण करते रहते हैं। ये ऐसे लोग होते हैं जो बिना मांगे ही सलाह देने का प्रयास करते हैं और वह भी सही सलाह न देकर गलत सलाह देते हैं क्योंकि इनका उद्देश्य ही दूसरे को किसी न किसी प्रकार से व किसी न किसी प्रकार की क्षति पहुँचाना रहता है। इनके पेट में कोई बात पचती नहीं और इधर की बात उधर तथा उधर की बात इधर वह भी नमक–मिर्च के सम्मिश्रण के साथ पहुँचाना इनका स्वभाव होता है। हालाँकि ऐसे व्यक्तियों की पहचान करना बहुत कठिन होता है क्योंकि इनके शब्दों का चयन, कहने की शैली अत्यन्त आकर्षक और व्यक्ति को प्रिय लगने वाली प्रतीत होती है किन्तु इनके द्वारा की जाने वाली प्रशंसा में भी दूसरे व्यक्ति की क्षति निहित होती है।

'खल' शब्द के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि यह विशिख (बाण) तथा व्याल (सर्प) के अन्तिम वर्णों 'ख' व 'ल' से बने हैं। निश्चित रूप से बाण और सर्प दोनों ही प्राणों का हरण करने वाले होते हैं और जब 'खल' में दोनों समाविष्ट हैं तो इनसे मिलने वाला कष्ट व पीड़ा भी प्राणघातक ही होगी। ऐसे लोगों के लिए बहुत से मुहावरे भी प्रचलित हैं जैसे 'दाल–भात में मूसरचंद', 'बिना बुलाए मेहमान', क्योंकि ये कभी भी और कहीं भी उपस्थित हो जाते हैं। तुलसीदास जी की पूर्वोक्त चौपाई में प्रयुक्त 'दाहिनेहु–बाएँ' शब्दों की व्याख्या विभिन्न रूपों में की जा सकती है। जहाँ दाहिना सही का और बायां गलत का बोध कराता है, वहीं दाहिना–बायाँ अलग–अलग पक्षों का भी परिचायक है। खल प्रवृत्ति का व्यक्ति कभी एक पक्ष में रहता है, तो कभी दूसरे पक्ष में। यानि भिन्न–भिन्न अवसरों पर पक्ष–परिवर्तन इनका स्वभाव है। इनकी अनुकूलता और प्रतिकूलता का सामान्यतः आभास नहीं हो पाता और संभवतः इसी कारण ये उन व्यक्तियों को गम्भीर संकट में डाल देते हैं जो इन्हें अपना हितैषी समझने की भूल कर बैठते हैं। ये व्यक्ति उन सलाहकारों से अधिक घातक होते हैं जो भयवश या लालचवश सत्य बात न कहकर मन को प्रिय लगने वाली बातें कहते हैं क्योंकि समान्यतः सलाहकार तभी ऐसा करते हैं जब सलाह लेने वाला व्यक्ति इन्हें सत्य बात कहने या उचित सलाह देने की स्वतन्त्रता नहीं देता है। वहीं खलगण के बारे में तो आभास ही नहीं हो पाता कि वे वास्तविक हितैषी न होकर छद्म हितैषी हैं। उनका हितैशी होना महज प्रदर्शन के लिए है जबकि वस्तुतः वह क्षति पहुँचाने वाले होते हैं। अन्ततः इस सम्बन्ध में अपनी चर्चा को यह कहते हुए विराम देना चाहता हूँ कि इनसे शत्रुता करना या फिर मित्रता करना दोनों ही घातक है, क्षतिकारक है। अतः इनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

यह अंक आपके हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के रचनाकारों, उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप सभी का सहयोग यथावत् मिलता रहेगा।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ0 (अनिल कुमार)

क्या भूल गये? जो याद करें

डॉ0 अनिल कुमार पाठक

बाबूजी को 'याद करें',
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

हर पल, बीत गया जो कल,
आज तथा आगामी कल।
भूले नहीं कभी जब उनको,
तब कैसा? यह 'याद करें'।
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गए? जो 'याद करें'।

रक्त शिराओं में है, उनका,
श्वास–सूत्र है सभी उन्हीं का।
शेष बचा जो वह भी उनका,
तब क्यूँ? कलरव–नाद करें।
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

जो कुछ भी है, इस तन–मन में,
बाहर–भीतर, घर–आँगन में।
उनसे ही संबद्ध सभी कुछ,
तब किससे फरियाद करें?
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

❖❖❖

निशा पुकारती रही रुका न चाँद एक पल

पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।

चला गया प्रवाह सा,
छोड़ एक आह सा,
समीर काँप सा उठा,
भर रहा उसाँस सा।

देखता ही रह गया, तारकों का श्वेत–दल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।।

रात साथ जो रहा,
प्रभात तक चला नहीं,
दीप तो बना दिया,
पतंग सा जला नहीं।

कह रहा है आसमान, प्यार भी है एक छल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।।
ओस अश्रु को बहा,
पंथ को निहारती,
अभाग्य साथ जो रहा,
जीत में भी हारती।

विरह–समुद्र में मिला निराश को कभी न थल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।।

❖❖❖

अँजुरी भर धूप

धर्मवीर भारती

अँजुरी भर धूप–सा
मुझे पी लो!
कण–कण
मुझे जी लो!
जितना हुआ हूँ मैं आज तक किसी का भी –
बादल नहाई घाटियों का,
पगडंडी का,
अलसाई शामों का,
जिन्हें नहीं लेता कभी उन भूले नामों का,

जिनको बहुत बेबसी में पुकारा है
जिनके आगे मेरा सारा अह हारा है,
गजरे–सी बाँहों का
रंग–रचे फूलों का
बौराए सागर के ज्वार–धुले कूलों का,
हरियाली छाहों का
अपने घर जानेवाली प्यारी राहों का –

जितना इन सबका हूँ
उतना कुल मिलाकर भी थोड़ा पड़ेगा
मैं जितना तुम्हारा हूँ
जी लो
मुझे कण–कण
अँजुरी भर
पी लो!

❖❖❖

गीत मेरे

हरिवंशराय बच्चन

गीत मेरे, देहरी का दीप–सा बन।
एक दुनिया है हृदय में, मानता हूँ,
वह घिरी तम से, इसे भी जानता हूँ,
छा रहा है किंतु बाहर भी तिमिर–घन,
गीत मेरे, देहरी का दीप–सा बन।

प्राण की लौ से तुझे जिस काल बारुँ,
और अपने कंठ पर तुझको सँवारूँ,
कह उठे संसार, आया ज्योति का क्षण,
गीत मेरे, देहरी का दीप–सा बन।

दूर कर मुझमें भरी तू कालिमा जब,
फैल जाए विश्व में भी लालिमा तब,
जानता सीमा नहीं है अग्नि का कण,
गीत मेरे, देहरी का दीप–सा बन।

जग विभामय न तो काली रात मेरी,
मैं विभामय तो नहीं जगती अँधेरी,
यह रहे विश्वास मेरा यह रहे प्रण,
गीत मेरे, देहरी का दीप–सा बन।

❖❖❖

उठे बादल, झुके बादल

हरिनारायण व्यास

उधर उस नीम की कलगी पकड़ने को
झुके बादल।
नयी रंगत सुहानी चढ़ रही है
सब के माथे पर।
उड़े बगुल, चले सारस,
हरस छाया किसानों में।
बरस भर की नयी उम्मीद
छायी है बरसने के तरानों में।
बरस जा रे, बरस जा ओ नयी दुनिया के
सुख सम्बल।
पड़े हैं खेत छाती चीर कर
नाले–नदी सूने।
बिलखते दादुरों के साथ सूखे झाड़
रूखे झाड़।
हवा बेजान होकर सिर पटकती
रो रही सरसर।
जमीं की धूल है बदहोश
भूली आज अपना घर।
किलकता आ, बरसता आ,
हमारी ओ खुशी बेकल।
उधर वह आम का झुरमुट
नहीं हैं पास में पनवट।
किलकती कोकिला, बेमान हो कर देखती जब
चाँद मुखड़े पर घटा–सी छा गयी है लट।
खड़ी हैं सिर लिये गागर
तुम्हारी इन्तजारी में
दरद करती कमर, दिल काँपता है
बेकरारी में।
जहाँ की बादशाही भी जहाँ पर
सिर झुकाती है
उन्हीं कोमल किशोरी का
दुखा कर दिल
कभी रस ले सकोगे क्या अरे बेदिल?
उठे बादल, झुके बादल।

❖❖❖

आहट

महेश आलोक

आओ मन की आहट–आहट तक पढ़ डालें
फिर कहें यहीं,
अपना उजड़ा–सा घर भी था।

यूँ लाल–हरी–नीली–पीली–उजली आँखें,
फिर नदी–नाव, मछली–मछुवारे–सी बातें।
कंधों तक चढ़ आयी लहरों की चालों में,
कल–परसों वाली भूल–भुलैया की रातें।

आओ तन–मन को नया–नया कुछ कर डालें
फिर कहें कभी,
मौसम को हल्का ज्वर भी था।

दिन चोंच दबाई धूप उड़ी गौरैया के,
सूरज की दबी हँसी–सी सोन चिरैया के।
चेहरे पर मली–खिली–फूली पुचकारों में,
दियना झाँका हो जैसे ताल–तलैया से।

आओ चीड़ों पर थकी चाँदनी बन सोएं
फिर कहें यहीं
अपना टूटा–सा पर भी था।

वो कई–कई कोणों में कटकर मुड़ जाना,
फिर गुणा–भाग वाले रिश्तों से जुड़ जाना।
निरजला,उपासे फीकी–सी उजलाहट में,
चालों में लुकी–छिपी बतियाहट पढ़ जाना।

आओ हर पल में मन्त्र सार्थक रच डालें,
फिर कहें कभी
दिन घूमा इधर–उधर भी था।

❖❖❖

किताबें झाँकती हैं

गुलजार

किताबें झाँकती है बंद अलमारी के शीशों से
बड़ी हसरत से तकती है,
महीनों अब मुलाकातें नही होती
जो शामें उनकी सोहबत में कटा करती थी।
अब अक्सर गुजर जाती है कम्प्यूटर के परदे पर
बड़ी बैचेन रहती है किताबें
उन्हें अब नींद में चलने की आदत हो गई है।

जो गजलें वो सुनाती थी कि जिनके शल कभी गिरते नही थे
जो रिश्तें वो सुनाती थी वो सारे उधड़े–उधड़े है,
कोई सफ्हा पलटता हूँ तो इक सिसकी निकलती है
कई लफ्जों के मानी गिर पड़े है
बिना पत्तों के सूखे टूँड लगते है वो सब अल्फाज
जिन पर अब कोई मानी उगते नही है।

जबाँ पर जायका आता था सफ्हे पलटने का
अब उँगली क्लिक करने से बस एक झपकी गुजरती है,
बहोत कुछ तह–ब–तह खुलता चला जाता है परदे पर
किताबों से जो जाती राब्ता था वो कट–सा गया है।

कभी सीनें पर रखकर लेट जाते थे
कभी गोदी में लेते थे,
कभी घुटनों को अपने रहल की सूरत बनाकर
नीम सजदे में पढ़ा करते थे
छूते थे जंबीं से।

वो सारा इल्म तो मिलता रहेगा आइन्दा भी
मगर वो जो उन किताबों में मिला करते थे।
सूखे फूल और महके हुए रूक्के
किताबें माँगने, गिरने, उठाने के बहाने जो रिश्ते बनते थे
अब उनका क्या होगा...!!

❖❖❖

सफलता पाँव चूमे

कमलेश भट्ट 'कमल'

सफलता पाँव चूमे गम का कोई भी न पल आए
दुआ है हर किसी की जिन्दगी में ऐसा कल आए।

ये डर पतझड़ में था अब पेड़ सूने ही न रह जाएँ
मगर कुछ रोज में ही फिर नए पत्ते निकल आए।

हमारे आपके खुद चाहने भर से ही क्या होगा
घटाएँ भी अगर चाहें तभी अच्छी फसल आए।

हमें बारिश ने मौका दे दिया असली परखने का
जो कच्चे रंग वाले थे वो अपने रंग बदल आए।

जहाँ जिस द्वार पर देखेंगे दाना आ ही जाएँगे
परिन्दों को भी क्या मतलब कुटी आए महल आए।

हमारा क्या हम अपनी दुश्मनी भी भूल जाएँगे
मगर उस ओर से भी दोस्ती की कुछ पहल आए।

अभी तो ताल सूखा है अभी उसमें दरारें हैं
पता क्या अगली बरसातों में उसमें भी कमल आए।

❖❖❖

रहस्य

हबीबुल हसन

दूर क्षितिज का मिलन बिन्दु एक धोखा है।
गर्म हवाएं पानी जैसा रेत पर दिखना धोखा है।।
मैं जब तक चाहूँ जी लूँगा कहना धोखा है।
मैं जो चाहूँ कर लूँगा यह कहना भी धोखा है।

जीवन के हर पल हर साँसे निश्चित है
जीवन में ही मृत्यु छुपा यह निश्चित हैं
इस रहस्य को जानकर भी अनजान बने
जीवन तो क्षणभंगुर है यह निश्चित है

कालचक्र के उलझन को छोड़ दिया,
भव सागर के बंधन को तोड़ दिया
देह लिए भी मुक्ति पंथ का गामी हूँ
आवागमन के बंधन को तोड़ दिया।।

निर्विकार निर्लिप्त भाव में आकर मैं
जीवन के इस उहा पोह को तोड़ दिया।
जीवन के हर पल हर सांसे निश्चित है
'हसन' तुम्हारा यह सब कहना निश्चित है।
'हसन' तुम्हारा यह सब कहना निश्चित है।

❖❖❖

गीतों के गांव

ओम निश्चल

फूलों के गाँव
फसलों के गाँव
आओ चलें गीतों के गाँव।

महके कोई रह रह के फूल
रेशम हुई राहों की धूल
बहती हुई अल्हड़ नदी
ढहते हुए यादों के कूल
चंदा के गाँव
सूरज के गाँव
आओ चलें तारों के गाँव।

पीपल के पात महुए के पात
आँचल भरे हर पल सौगात
सावन झरे मोती के बूँद
फागुनी धूप सहलाए गात
पीपल की छाँव
निबिया की छाँव
आओ चलें सुख–दुख की छाँव।

नदिया का जल पोखर का जल
मीठी छुवन हर छिन हर पल
गुजरे हुए बासंती दिन
अब भी नहीं होते ओझल
भटकें नहीं
लहरों के पाँव
आओ चलें रिश्तों की नाव।

❖❖❖

ठहरो साथी

ओम नीरव

आगे है भीषण अंधकार ठहरो साथी,
कर लो थोड़ा मन में विचार ठहरो साथी!

दासता–निशा का भोर
कहो किसने देखा?
जंगल में नाचा मोर
कहो किसने देखा?
अबतक उसका है इंतजार ठहरो साथी!
आगे है भीषण अंधकार ठहरो साथी!

भ्रम है कहना
केवल स्वराज को ही सुराज,
भ्रम है कहना
गति को ही प्रगति आज,
लो पहले अपना भ्रम निवार ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार ठहरो साथी!

सह लो कितने भी अनाचार
बनकर सहिष्णु
पर लक्ष्य तभी पाओगे
जब होगे जयिष्णु!
कुचलो कंटक लो पथ सँवार ठहरो साथी
आगे है भीषण अंधकार ठहरो साथी!

यह अंधकार पथ का है
दैवी शाप नहीं,
या पूर्व जन्म का संचित
कोई पाप नहीं!
तम कायर मन का दुर्विचार ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार ठहरो साथी!

बाहर के सूरज से नीरव
कब रात कटी,
हर उदय अंततः अस्त बना
आ रात डटी!
अब अपना सूरज लो निखार ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार ठहरो साथी!

❖❖❖

दोहे

विज्ञान व्रत

जब से नगरी में बना, चुप रहना कानून।
हम जैसों की चुप्पियाँ, हुईं और बातून।।

राजा देखे महल से, खिड़की भर आकाश।
फुटपाथों की जिन्दगी, उसको दिखती काश।।

बेबस परजा छोड़ती, गरम–गरम उच्छ्वास।
अबकी सरदी में रहा, गरमी का अहसास।।

बस्ती जलती देख कर, राजा था हलकान।
चढ़ा अटारी देखने, काम हुआ आसान।।

पूरी बस्ती हो गयी, इक मलबे का ढेर।
आप लड़ाएँ ठाठ से, तीतर और बटेर।।

औंधे मुँह नीचे गिरे, गुम्बद के आदर्श
दीवारों के दिल फटे, हँसी उड़ायें फर्श।

जारी है हुक्काम का, जनता को फरमान।
आँखों में सागर रहे, चेहरा रेगिस्तान।।

जो भी पहुँचा महल में, वही हुआ मखसूस।
कंदीलों के दर्द को, क्या समझे फानूस।।

राजा तेरे द्वार से, निकला आज जुलूस।
जनता के आक्रोश को, कुछ तो कर महसूस।।

तू तो बैठा महल में, तुझको क्या मालूम।
खुले गगन के आसरे, काटे रात हुजूम।।

❖❖❖

वृद्धों को भूख लगती है

विद्या विन्दु सिंह

वृद्धों को भूख लगती है
वे माँगते हैं खाना
उन्हें मिलता है ताना
इस उमर में भी इतनी भूख ?
उनकी आँते चिकोटी काटती हैं
वे पानी पी पी कर
उन्हें सहलाते हैं
कुछ किसी से कह नहीं पाते हैं
उसे व्रत उपवास का नाम देकर
स्वयं को बहलाते हैं।
वे बड़े सम्पन्न घरों के हैं
अपना हाथ खाली कर चुके हैं।
दूसरों के आगे
हाथ पसार नहीं सकते,
अपने हाथ बटोर चुके हैं।
वे गम खाते हैं, कम खाते हैं
और खोखले होते जा रहे तन में
शक्ति की कल्पना करते
काम में जुट जाते हैं।

❖❖❖

जुड़वाँ की मुसीबत

श्रीनाथ सिंह

एक साथ जन्मे हम दोनों,
मैं औ मेरा भाई।
किन्तु शकल सूरत मिलने से,
बेहद आफत आई।
मैं हूँ कौन? कौन है भैया?
समझ न कोई पाता,
जाता यदि वह नहीं मदरसे,
तो मैं ही पिट जाता।
भाई का ले नाम मुझे थे,
घर के लोग बुलाते।
पड़ता वह बीमार – दवाई
लेकिन मुझे पिलाते।
धोखे में आ मात पिता ने,
भी की भूल घनेरी।
भाई से ब्याहा उसको,
जो होती दुलहिन मेरी।
क्या बतलाऊँ मुसीबतें,
क्या पड़ीं शीश पर पटपट,
भाई जब मर गया मुझी को,
लोग ले गए मरघट।

❖❖❖

सभा का खेल

सुभद्राकुमारी चौहान

सभा सभा का खेल आज हम
खेलेंगे जीजी आओ,
मैं गाधी जी, छोटे नेहरू
तुम सरोजिनी बन जाओ।

मेरा तो सब काम लंगोटी
गमछे से चल जाएगा,
छोटे भी खद्दर का कुर्ता
पेटी से ले आएगा।

लेकिन जीजी तुम्हें चाहिए
एक बहुत बढ़िया सारी,
वह तुम माँ से ही ले लेना
आज सभा होगी भारी।

मोहन लल्ली पुलिस बनेंगे
हम भाषण करने वाले,
वे लाठियाँ चलाने वाले
हम घायल मरने वाले।

छोटे बोला देखो भैया
मैं तो मार न खाऊँगा,
मुझको मारा अगर किसी ने
मैं भी मार लगाऊँगा!

कहा बड़े ने–छोटे जब तुम
नेहरू जी बन जाओगे,
गांधी जी की बात मानकर
क्या तुम मार न खाओगे?

खेल खेल में छोटे भैया
होगी झूठमूठ की मार,
चोट न आएगी नेहरू जी
अब तुम हो जाओ तैयार।

हुई सभा प्रारम्भ, कहा
गांधी ने चरखा चलवाओ,
नेहरू जी भी बोले भाई
खद्दर पहनो पहनाओ।

उठकर फिर देवी सरोजिनी
धीरे से बोलीं, बहनो!
हिन्दू मुस्लिम मेल बढ़ाओ
सभी शुद्ध खद्दर पहनो।

छोड़ो सभी विदेशी चीजें
लो देशी सूई तागा,
इतने में लौटे काका जी
नेहरू सीट छोड़ भागा।

काका आए, काका आए
चलो सिनेमा जाएँगे,
घोरी दीक्षित को देखेंगे
केक–मिठाई खाएँगे!

जीजी, चलो, सभा फिर होगी
अभी सिनेमा है जाना,
आओ, खेल बहुत अच्छा है
फिर सरोजिनी बन जाना।

चलो चलें, अब जरा देर को
घोरी दीक्षित बन जाएँ,
उछलें–कूदें शोर मचावें
मोटर गाड़ी दौड़ावें!

❖❖❖

तोते पढ़ो

श्रीधर पाठक

पढ़ मेरे तोते सीता–राम,
सीता–राम राधा–श्याम।
राधा–श्याम, श्याम–श्याम,
श्याम–श्याम, सीता–राम।

हरि मुरारे गोविंदे,
श्री मुकुन्द, परमानंदे।
परम पुरुष माधव मायेश,
नारायण त्रैलोक्य नरेश।

अलख निरंजन निर्गुन नाम,
अखिल लोक कृत पूरन काम।
पढ़ मरे तोते सीता–राम,
सीता–राम राधा–श्याम।

हरा तेरा चटकीला रंग,
भरा गठीला सुंदर अंग।
गले बिराजे डोरा लाल,
गोल चोंच, फिर बोल रसाल।

बन पेड़ों में तेरा वास,
भोजन फल विचरन आकाश।
अब सुंदर पिंजड़े में बंद,
'सब तज हर भज' कर आनंद।

देख तुझे और तेरा ढंग,
मन में उपजे अजब उमंग।
बोलो प्यारे सीता–राम,
सीता–राम, राधा–श्याम।

❖❖❖

चकमक पत्थर

अनामिका

जब–तब वह मुझे टकरा जाता है ।
दो चकमक पत्थर हैं शायद हम
लगातार टकराने से
हमारे बीच चिनकता है
आग का सँक्षिप्त हस्ताक्षर
बस, एक इनिशियल

जैसा कि विड्राअल फार्म पर
करना होता है
कुट–कुट होते ही ।

क्यों होती है इमसे इतनी कुट–कुट आखिर ?
क्या खाते में कुछ बचा ही नहीं है ?
खाता और उसका ?

उसका खाता, बस, इतना है
वह खाता है
धून्धर माता की कसम
और धन्धे की
'पेट में नहीं एक दाना गया है
अगरबत्तियाँ ले लो दस की दो !'

इस नन्हें सौदागर सिन्दबाद से कोई
कहे भी तो क्या और कैसे ?
बीच समन्दर में उलटा है इसका जहाज ।
अबाबील की चोंच में लटके–लटके

और कितनी दूर उड़ना होगा इसको
इस जनसमुद्र की दहाड़ रही लहरों पर ?
वह मेरे बच्चे से भी कुछ छोटा ही है ।
एक दिन फ्लाईओवर के नीचे मुझको दिखा
मस्ती में गोल–गोल दौड़ता हुआ ।

'ओए, की गल है ?
अकेले–अकेले ये क्या खा रहा है?'
मैंने जब पूछा,
एक मिनट को वह रुका, बोला हँसकर
'कहते हैं इसको ईरानी पुलाव ।
सुबह–सुबह होटल के पिछवाड़े बँटता है !
खाने पर पेट जोर से दुखता है,
लेकिन भरा हो तो दुखने का क्या है !
तीस बार गोल–गोल दौड़ो
फिर मजे में थककर सो जाओ !
खाना है ईरानी पुलाव ?'

❖❖❖

प्रेम तुम्हारा पावन-पावन

रुचि चतुर्वेदी

प्रेम तुम्हारा पावन पावन,
बनकर सावन बरस गया।
इतना बरसा हृदय धरा पर,
नयन गगन भी हरष गया।

भावों से भर गयी बदरिया,
नये रंग–रंग गयी चुनरिया।
कंगना बजे मल्हार सुनाये,
झुमके झूले बन इठलाए।

पायलिया बज उठी छुअन से,
मौसम खुशियाँ परस गया
इतना बरसा हृदय धरा पर,
नयन गगन भी हरष गया।

मुख से छलके प्रेम गगरिया,
नैनों से छलका इक सागर।
रीत रीत जाने को आतुर,
मन भीतर इक नेहिल गागर।

हिरदय का आँगन भावों की
वर्षा रितु में सरस गया
इतना बरसा हृदय धरा पर,
नयन गगन भी हरष गया।

❖❖❖

प्रेम के दिनों में

गीताश्री

अपने प्रेम के दिनों में हम जगहे ढूँढ़ा करते थे
जहाँ हम प्रेम की छलकती गगरी को हौले से धर कर सुस्ता सकें,
हम खोजा करते थे वह छाँव,
जहाँ मेरी गोद में सिर रख कर तुम
अनगिन खवाब बुना करते थे
किन्नरो की तालियाँ हमें ख्वाब से जगा देती थीं
फेरीवाला मुस्कुराता हुआ ललचा देता था
हमारी दूसरी भूख जाग उठती थी।
हमें नरम घास की देह से उठना नहीं था
हमें चीटियाँ और चूहे भी अनदेखा कर गुजर जाते थे।
पेड़ो की झुकी डालियाँ अक्सर
धूप का एक टुकड़ा तुम्हारे चेहरे पर,
पोत दिया करती थी।
मेरे लिए दुनिया उसी आवर्त में सिमट आती थी,
बारिश हमें छू–छू कर हवा हो जाती थी,
और हवा जैसे आँधियाँ
हरकारे आवाज लगाते हमें घेरते थे चौतरफा
तुम उठते थे किसी पर्वत की तरह
मैं किसी लहर–सी सिर धुनती थी।
तुम्हें वे ले जाने आए थे
मुझसे दूर–दूर बहुत दूर
जहाँ नहीं पहुँचती थी आवाजें न मेरी कातर पुकार,
फिर समझा नदी होने का मतलब
कि क्यों नदी पीछा करती है समन्दर का
और अन्त में वही पहुँचती है समन्दर तक।
बेचौन समन्दर, फेनिल उच्छंवासो से भरा...
समन्दर–समन्दर ही रहा, नदी–नदी नहीं रह पाई।

❖❖❖

अब मैं लौट रही हूँ

अमृता भारती

अब
कोइ फूल नहीं रहा
न वे फूल ही
जो अपने अर्थों को अलग रख कर भी
एक डोरी में गुँथ जाते थे,
छोटे–से क्षण की
लम्बी डोरी में ।

अब मौसम बदल गया है
और टहनियों की नम्रता
कभी की झर गई है ––

मैं अनुभव करती हूँ
बिजली का संचरण
बादलों में दरारें डालता
और उनकी सींवन में
अपलक लुप्त होता ––

मैंने अपने को समेटना शुरू कर दिया है,
बाहर केवल एक दिया रख कर
उसके प्रति,
जो पहले अन्दर था
प्रकाशित मन के केन्द्र में
और अब बाहर रह सकता है,
उस दीये के नीचे के
अँधेरे में।

अब मैं अपने को अलग कर रही हूँ
समय के गुँथे हुए अर्थों से
और लौट रही हूँ,
अपने शब्द–गृह में

जहाँ
अभी पिछले क्षण
टूट कर गिरा था आकाश,
और अब एक छोटी–सी
ठण्डी चारदीवारी है ।

❖❖❖

जीवनाधार

अनुपमा पाठक

दूर हैं तुमसे?
तो क्या...
मन में गंगा की धार समेट लाये हैं!
सारा प्यार...
समस्त जीवनाधार
समेट लाये हैं!

हमारी किस्मत की तरह...
ऐ! माटी...
तू भी हर पल
साथ है...
तीज की पूजा हेतु
गौरी–गणेश बनाने को
हम कुछ रजकणों से संस्कार
समेट लाये हैं!

सावन की फुहारें...
तो हैं यहाँ...
पर भोले बाबा को
अर्पित होने वाले
बेलपत्र कहाँ हैं...?
सावन से जुडी...
इन पावन यादों का
पारावार समेट लाये हैं!

भाव–भाषा...
सब तो वही है...
अपने हृदय में
सबकुछ तो संजोया पूर्ववत ही है...
इस आपाधापी में...
सुकून हेतु
कुछ कोमल
रचनात्मक सरोकार समेट लाये हैं!

दूर हैं तुमसे?
तो क्या...
मन में गंगा की धार समेट लाये हैं!
सारा प्यार...
समस्त जीवनाधार
समेट लाये हैं!

❖❖❖

मोक्ष

इंदिरा शर्मा

दुनिया पकड़ना चाहती है
आँचल तुम्हारा,
चाहती है बुद्ध बनना
काषाय वस्त्र, भिक्षा पात्र, भिक्षुक संघ
महाप्रस्थान और निर्वाण
यह महावृत जीवन तुम्हारा
छोड़ने होंगे यहीं राजसी वेश,
कर्तन किए केश,
ये राज मुकुट मणियाँ नहीं शेष
यह प्रकृति परिवेश
तुममें हिम्मत नहीं थी शेष,
अंतिम बार, बस अंतिम बार
देख आऊँ,
निद्रा मग्न प्रकोष्ठ
शांत निर्विकार,
शयन कक्ष, गोपा निद्रा मग्न
हृदय का द्वार,
अंत में मोह का त्याग,
अब न बचा कुछ शेष

छोड़ सकोगे घर
रात्रि की निस्तब्ध वेला में
शून्य बन जाने को शून्य हो जाने को
प्रबल मोह क्या रोक न लेगा तुम्हे ?
बाहर तैयार खड़ा है रथ,
प्रतीक्षा रत,
तुम्हे ले जाने को
मोक्ष पाने को

❖❖❖

रीतते हुए

उमा अर्पिता

मेरे दोनों हाथों की
मुट्ठियाँ बंद थीं
एक में थे अनगिनत
रंगीन सपने
और दूसरी में
आशा और विश्वास के संगम का
निर्मल पानी, जिन्हें सहेजे–सहेजे
पग–पग धरती
धीमे–धीमे चलती रही थी मैं।

लेकिन अचानक उठा था
न जाने कैसा तूफान, कि अनायास ही
खुल गई थीं मेरी मुट्ठियाँ
और बिखर गया था
एक–एक सपना
रीत गया था उँगलियों के पोरों से
आशा और विश्वास का पानी भी।

अब मेरी हथेलियों में चुभती है
उदासी, निराशा और अविश्वास की रेत
तुम्हीं कहो दोस्त
कब तक सहनी होगी मुझे यह चुभन...?

❖❖❖

सम्मोहन

ज्योत्स्ना मिश्रा

ना! इसे केवल दुख मत कहना!
ये जो अंदर से भरी गगरी सी, छलछलातीं हूँ,
जान बूझते ही, अक्सर किसी जंगल में भटक जातीं हूँ!
ये केवल गम नहीं है सखी!
ये जो कुछ भी है केवल व्यथा नहीं है!
न कह पायी गयी कोई कथा नहीं है!
मैं जो उड़ते–उड़ते तेरे काँधे पर बैठ जातीं हूँ,
तो ये मात्र थकान का उतरना नहीं!
ज्वार का ठहरना नहीं!
ये जो बंद गलियों में निरुत्तर भटकते प्रश्न,
लौट लौट आते है।
और मेरी हथेलियाँ किसी भीगे स्वप्न को,
सहम के छोड़ देती हैं।
और अनायास ही हवाऐं,
फूल का अनदेखा सपना तोड़ देतीं हैं।
ये शताब्दियों की सिहरन,
थरथराते हुये पलों का पराग की तरह, बिखर जाना!
वक्त की चमड़ी फट जाती है!
अरण्य–सा विस्तार लिये,
पहाड़ों जैसा मौन उभर आना!
सदियों के सन्नाटे क्या केवल दुख होतें हैं?
पपड़ाये होठ लिये एहसास केवल सिसकी बोते हैं?
नहीं ये दुख नहीं दुख का भ्रम होता है।
ये प्रेम के जाने के बाद का पल,
जीवन के अद्‌भुत सम्मोहन से बाहर आकर
फिर मोहित होने का क्रम होता है।

❖❖❖

माँ के लिए

निवेदिता

मैं एक मीठी नींद लेना चाहती हूँ,
चालीस की उम्र में भी चाहती हूँ कि
मेरे सर पर हाथ रख कर कोई कहे
सब ठीक हो जाएगा।
ठीक वैसे ही जैसे बचपन में माँ
हमें बहलाया करती थी
हमारी उम्मीदें जगाती थीं।

मैं इस उम्र में माँ की गोद में,
सुकून की नींद लेना चाहती हूँ,
उसके सीने से लिपट जी भर रोना चाहती हूँ।

जानती हूँ समय ठहरता नहीं,
बचपन पीछे लौट चुका है,
फिर भी बार–बार मेरे आइने में मुस्कुराता है,
मैं फिर से नन्हीं बच्ची की तरह,
बेवजह रोना खिलखिलाना चाहती हूँ।

मैंने तो कई सदियां गुजारी है,
हर सदी में स्त्री का दुख एक सा है,
हर सदी की स्त्री का संघर्ष,
घर की दीवारों में दफन है,
हर सदी में वह अपने को मिटाती रही है।
घर के लिए सुकून और खुशी तलाशती रही है
वह आंधी और तूफानों के बीच कुछ रोशनी बचा लाई है
उस दिन के लिए जब बच्चे आएँगे तो उजाले में वह उनसे मिलेगी।
और उनकी आँखों में तलाशेगी अपने लिए आदर और प्यार
कि बच्चे एक दिन कहेंगे
यह वही उजाला है जिसे हमारी माँ ने
सूरज से चुराया था,
बादलों से छिपाया था,
हवा के थपेड़ों से बचाया था।
वह रोशनी है यह जिससे रौशन है इन्सान।

❖❖❖

मेघ बूँद

पुष्पिता

नदी के
द्वीप वक्ष पर,
लहरें लिख जाती हैं,
नदी की हृदयाकाँक्षा
जैसे मैं।

सागर के
रेतीले तट पर,
भँवरें लिख जाती हैं,
सागर के स्वप्न भँवर,
जैसे तुम।

पृथ्वी के
सूने वक्ष पर,
कभी ओस,
कभी मेघ बूँद,
लिख जाती है,
तृषा–तृप्ति की,
अनुपम गाथा,
जैसे मैं।

❖❖❖

बारिश

जावेद आलम खान

खिड़की से बूंदें देखकर लहकी लड़की
भीगने के लिए जब तक छत पर पहुँची
बारिश रुक चुकी थी।
उसके तलवे सहलाने के लिए रह गई थी
केवल गीली छत,
चेहरे पर पड़ती हवा में बूंदों की तासीर तो थी
मगर बूंदों की रोमांचक चोट न थी।

बच्ची उदासी भरे लहजे में बोली,
अब्बू मैं अम्मी से बारिश की शिकायत करूंगी,
और यकायक मुझे भान हुआ,
कि दरवाजे के पार होती बारिश से अनजान,
मोबाइल की बोर्ड पर चलती अंगुलियों में खोया,
असली कविता उधेड़कर नकली कविता बुन रहा हूँ,
मैं कविता को छोड़कर महज कवि को सुन रहा हूँ।

मुझे अहसास हुआ कि कविता और मुझमें,
बस इतनी ही दूरी है
जितनी छत और जीने की सीढ़ियों में है,
पास बैठे बाप और बेटी की पीढ़ियों में है,
कि परिपक्वता कविता की नहीं कवि की मजबूरी है।
कविता तो किसी छत पर बारिश में भीग रही होगी
और कवि समझदारी का लबादा ओढ़े,
बालकनी में बैठकर हिकारत से देख रहा होगा।

बस मैंने छत का दरवाजा खोला और पुकारा बेसाख्ता,
जल्दी आओ अमायरा बारिश फिर से आई है।

जीवन की सच्ची कविता मैंने अभी–अभी सीखी है,
अपनी तीन साल की बेटी से।

❖❖❖

सपना

अखिलेश श्रीवास्तव

मैंने दुखों का समन्दर पैरों से लांघकर नहीं
सर के बल चलकर पार किया है।
हरियाली धरती पर लोटने का मन था,
पर रेत फैली है दूर तक
हँसता भी हूँ तो
बालू चबाता हूँ!

समन्दर के सफर में
जल दैत्यों से लड़ा,
कुछ मछलियों से दोस्ती की
सिर को तराश कर नुकीला बनाया,
जिस हिस्से में मेरे सपने रहते थे
उन्हें छील कर जल प्रवाहित कर दिया!
जिन पैरों को पंख बनना था
मैंने उन्हें पूंछ बना लिया!

इस नुकीले सर को लिए–लिए
जब सुनता हूँ कि ऊंट की तरह लम्बी गर्दन चाहिये,
रेगिस्तान को पार करने के लिये,
तो बचे–खुचे सपने फिर उठाता हूँ।
उसी की बनाता हूँ रस्सी

एक सपने की रस्सी के फंदे पर,
दूसरे सपने की गर्दन लुढ़क जाती है,
तीसरे सपने की जीभ बाहर निकल आई है।

हर सपने की मौत के बाद,
मेरी आँखें अब इक रेत का टीला हैं,
चढ़कर देखो तो दूर रेगिस्तान में,
एक झरना दिखाई पड़ता है!
आ से आंख
आंख माने सपना!

❖❖❖

मकड़ी के जाले

अनूप अशेष

मकड़ी के जाले हैं
बाँस की अटारी
सीने में बैठी है
भूख की कटारी।

माँ के घर बेटी है
दूर अभी गौना
चूल्हे में
आँच नहीं
खाट में बिछौना,
पिता तो किवाड़ हुए
सांकल महतारी।

खेतों से बीज गया
आँखों से भाई
घर का
कोना–कोना
झाँके महँगाई,
आसों का साल हुआ
सांप की पिटारी।

पीते घुमड़े बादल
देहों का पानी
मथती
छूँछी मटकी
लाज की मथानी,
बालों का तेल हुई
गाँव की उधारी।

❖❖❖

पिता की इच्छाएँ

आशीष त्रिपाठी

पिता जीते हैं इच्छाओं में,

पिता की इच्छाएँ,
उन चिरैयों का झुंड,
जो आता है आँगन में रोज
पिता के बिखराए दाने चुगने।

वे हो जाना चाहते हैं हमारे लिए
ठंडी में गर्म स्वेटर
और गर्मी में सर की अँगौछी।

हमारी भूख में
बटुओं में पकते अन्न की तरह,
गमकना चाहते हैं पिता
हमारी थकान में छुट्टी की घंटी की तरह
बजना चाहते हैं वे।

पिता घर को बना देना चाहते हैं
सुनार की भट्ठी,
वे हमें खरा सोना देखना चाहते हैं।

लगता है कभी–कभी
इच्छाएँ नहीं होंगी
तो क्या होगा पिता का।

❖❖❖

एक सच यह भी

कुमार विक्रम

बस अभी–अभी मैंने विषपान किया
यह विष अब मेरी धमनियों में उतर
मेरे खून का हिस्सा होकर,
सारे शरीर में गिलहरियों की तरह
दौड़ेगा, कूदेगा, बैठेगा, सोएगा।

लेकिन मेरे चेहरे की कांति
उस पर बिखरी–फैली आभा पर,
कोई असर नहीं दिखेगा।

क्योंकि अधपढ़ शहरी की भांति,
सबके बीचों–बीच,
रेलवे प्लेटफॉर्म पर बैठ,
अपना थैला खोल
सबके सामने मैं पानी की बोतल
नहीं निकालता हूँ।
मेरे गंदे शर्ट, मेरी पीली पैंट,
मेरा पुराना लाल तौलिया,
मटमैली चप्पल
यह सब मैं दिखने नहीं देता हूँ।

क्योंकि मेरे पास है क्रेडिट कार्ड
और मैं करता हूँ सफर,
बड़े हल्के होकर...
मेरे धमनियों का विष ही है काफी,
मेरे सफर की जरूरतों के लिए
सफर के बोझ के लिए
चेहरे की कांति बनाए रखने के लिए।

❖❖❖

दीपावली

जनार्दन राय

गगन के दीप हैं जले,
मगन हो सारी रात–रात।
भू के दीप भी जलें,
खुशी से आज प्राक् प्रात।

हृदय के दीप भी जलें,
मिले हृदय–हृदय से आज।
मन के दीप भी जलें,
मिले नयन–नयन से आज।

आकाश के प्रकाश से
आलोक देव–लोक में।
भू–प्रकाश से ही हो
प्रकाश मर्त्य लोक में।

दीप जल रहे मगर,
पतंग भी हैं जल रहे।
सीख–सीख अन्य कीट,
प्राण–दान कर रहे।

दीप–दान पर्व है,
सजें खुशी के साज आज।
दिल का दीप दान हो
बजें मिलन के राग आज।

पुण्य का प्रभात हो,
अन्त मोह–रात हो।
ज्ञान–धन का लाभ हो,
द्वेष, भय परास्त हो।

इसलिए ही सब के सब
मनायेंगे दीवालियाँ।
प्रेम, हर्ष ऐक्य से
जलायें दीप अवलियाँ।

❖❖❖

धूप आगे बढ़ गई

जगदीश पंकज

क्यों कंगूरों पर ठहरकर
धूप आगे बढ़ गई,
है कहाँ मध्यान्ह
संध्या देहरी पर चढ़ गई।

हर सुबह देखा तिमिर,
पीछे गया, आगे खड़ा है
आज बौनी सभ्यता का
आदमी कितना बड़ा है
नाप ही परछाइयों की
क्यों कहानी गढ़ गई।

हम विकल्पों में सदा,
चिन्तित रहे, आतुर रहे,
और बस दो बूँद को,
व्याकुल सभी अंकुर रहे
हर भविष्यत् की किरण
खाली हथेली पढ़ गई

आज तो हर मोड़ पर
टकराव है या शोर है,
क्या करे इन्सान, अपने
आप से ही चोर है
फटे पन्नों को मिलाकर
जिल्द जैसे मढ़ गई।

❖❖❖

गरीब

निशांत मिश्रा

जिन्दगी गरीब की वो गर्म हवा है,
जो साँस लेकर छोड़ दी जाती है,
जिन्दगी गरीब की वो गर्म सलाख है,
जो जिधर चाहें मोड़ दी जाती है,
कौन पूछता है हाल इनका, जमाने में कैसे रहते हैं,
छोटे से ले बड़ों तक के जुल्मों सितम सहते हैं,
गर्दन दी दबा गर आवाज इन्होंने उठाई,
सिर जरा सा ऊँचा किया तो समझो,
जीवन में शामत आई,
बिलबिलाते हैं लाखों कीड़े से गरीब इस जहाँ में,
फिरते हैं पागल कुत्ते से, गरीब इस जहाँ में,
कौन पूछता है कि खाने को रोटी है या नहीं,
सर्दी, गर्मी, बरसात में सिर छुपाने को,
टूटा छप्पर है या नहीं,
पग–पग गरीबों को बेरहम अमीरों की,
ठोकर लगा करती है,
कैसी है उनकी थाती, भूख, बेइज्जती, क्रूरता
सब सहा करती है,
कौन पूछता है, मर गया तो मर जाने दो,
गरीब ही तो है,
जलाने को पैसे नहीं, कहाँ से आयें,
पानी में बहा दो, गरीब ही तो है।

❖❖❖

गिलहरी

नरेश मेहन

पेड़ से उतर कर
बहुत चहकती – फुदकती थी,
मेरे आंगन में
बच्चों की तरह
कभी पूँछ हिलाती
मेरे गुड़िया की तरह
कभी मुंह बनाती
अठखेलियाँ करती।

कभी पेड़ पर
कभी मुंडेर पर
चढ़ती – उतरती
निकल जाती पास से
एक बच्ची की तरह
मुझे
बहुत अच्छी लगती थी
वह गिलहरी
ठीक मेरी बेटी की तरह.।

मैं चाहता था
यूं ही खेलती रहे
मेरे आंगन में
मेरी बच्ची
और यह गिलहरी.
मगर एक दिन
काट दिया गया वह पेड़
एक विशाल भवन के लिए.।

पेड़ के साथ ही
चली गई गिलहरी
न जाने कहाँ
कर गई सूना मेरा जहाँ
ठीक उसी तरह
चली गई थी
पराई होकर
जैसे
मेरी बेटी!

❖❖❖

जीता जागता इंसान

बृजेश नीरज

उकता गया हूँ
वही चेहरे देख–देख
सुबह शाम
वही सपाट चेहरे
भावहीन
किसी रोबोट की तरह।

बस चलायमान
कभी दर्द नहीं छलकता
इनकी आँखों में।

कभी–कभी
मुँह थोड़ा फैल जाता है
उबासी लेते हुए
कभी–कभी लगता है
जैसे मुस्करा रहे हैं।

ये न बोलते हैं
न सोचते हैं
बस चलायमान हैं
किसी साफ्टवेयर से संचालित।

कभी सोचता हूं
कब तक देखना होगा
इन मशीनी चेहरों को
क्या कभी
कोई सुबह
कोई शाम
कोई किरन
कोई हवा
भर पाएगी इनमें भी
जीवन के अंश
कि अचानक
ठहाके मार के हँस पड़ें
ये
चीख पड़ें
जब चोट लगे इन्हें

कभी तो हो ऐसा
काश
आदमी फिर से बन जाए
एक जीता जागता इंसान!

❖❖❖

मेरी मातृभूमि

भरत प्रसाद

ओ मेरी विशाल और
महान मातृभूमि
मैं आज
तुम्हारी ममतामयी धूल और मिट्टी को
साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

सदा हरी–भरी तुम्हारी गोद
प्रसन्न फूलों से पूर्ण
तुम्हारे पानी, फल और अन्न
हमें बहुत शक्ति देते हैं।

माँ तुम तो
प्रेम, शान्ति और करुणा की
जननी हो,
तुमने पाठ पढ़ाया है कि
अपने सम्पूर्ण हृदय से
सच्चा प्रेम करो।
बुद्ध, महावीर, मोहनदास
और नरेन्द्रनाथ
माँ, तुम्हारे महान पुत्र हैं––
जिन्होंने आदर्श मार्ग प्रकाशित किया।

हम सभी सच्चे हृदय से
तुम्हारी मिट्टी और धूल को
साष्टांग प्रणाम करते हैं!

❖❖❖

हरिवंशराय बच्चन

जन्म 27 नवम्बर 1907, निधन 18 जनवरी 2003

मुझे न अपने से कुछ प्यार,
मिट्टी का हूँ, छोटा दीपक,
ज्योति चाहती, दुनिया जब तक,
मेरी, जल–जल कर मैं उसको देने को तैयार

पर यदि मेरी लौ के द्वार,
दुनिया की आँखों को निद्रित,
चकाचौध करते हों छिद्रित
मुझे बुझा दे बुझ जाने से मुझे नहीं इंकार

केवल इतना ले वह जान
मिट्टी के दीपों के अंतर
मुझमें दिया प्रकृति ने है कर
मैं सजीव दीपक हूँ मुझ में भरा हुआ है मान

पहले कर ले खूब विचार
तब वह मुझ पर हाथ बढ़ाए
कहीं न पीछे से पछताए
बुझा मुझे फिर जला सकेगी नहीं दूसरी बार

सृजन स्मरण

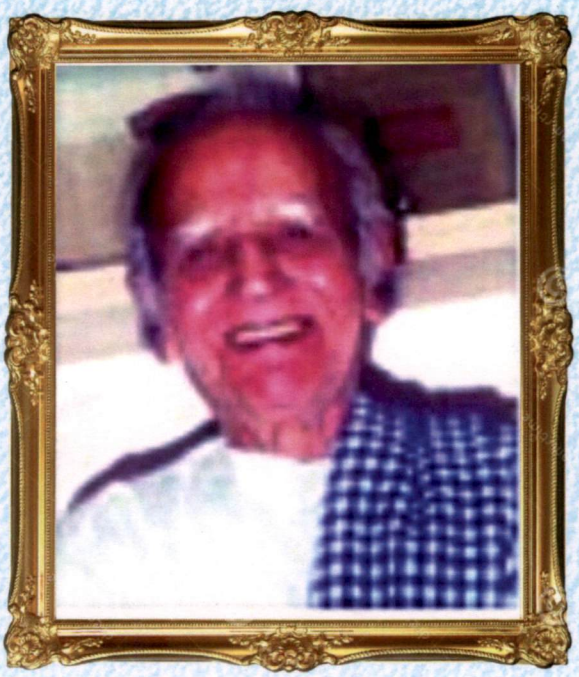

हरिनारायण व्यास

जन्म 14 अक्तूबर 1923, निधन 14 जनवरी 2013

क्षिति दिगंचल चूमता आकाश,
दिशि–विदिशि की प्राण–धारा चेतना की मुरलिका से
शून्य वन गुंजित, नया रव आज भव में भर चला।
उठ रहे श्रावण घटा से प्रिय–मिलन क्षण
जगमगाते हर निमिष में मुक्ति के आभास
ज्योति अब लेने लगी है जागरण की साँस।
एक–दो नक्षत्र रह–रह
सो रहे अपनी व्यथा कह।
घुल रहा तम
दूर गुम–सुम प्राण तुम।